INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

कबीर का धर्म समन्वयकारी और हिंदू–मुस्लिम ऐक्य प्रतिष्ठापक रूप

डॉ. संतोष रानी
सहायक आचार्य हिंदी, हिंदी विभाग,
दयानंद महाविद्यालय, हिसार

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में संत कबीर की वाणी के आधार पर उनके धर्म–समन्वयकारी रूप और हिंदू–मुस्लिम ऐक्य की उनकी अवधारणा का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन की केंद्रीय समस्या यह है कि बाह्याचार, जातिगत भेदभाव और धार्मिक कट्टरता की आलोचना करने वाली कबीर की वाणी विभिन्न समुदायों के बीच सह–अस्तित्व का आधार कैसे निर्मित करती है। अध्ययन में चयनित साखियों, पदों और उपलब्ध आलोचनात्मक ग्रंथों का वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक पाठ किया गया है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा कबीर को ईश्वर के विविध नामों के पीछे एक आध्यात्मिक सत्ता देखने की दृष्टि देती है। राम और रहीम की एकता, जीवों के प्रति करुणा तथा कथनी और करनी की संगति इस दृष्टि को नैतिक आधार प्रदान करती हैं। कबीर ने मंदिर और मस्जिद से जुड़े उन आचरणों को प्रश्नांकित किया जिनमें पूजा–पद्धति का आग्रह करुणा और आत्मपरीक्षण पर हावी हो जाता है। जातिगत ऊँच–नीच की उनकी आलोचना से इस समन्वय का सामाजिक पक्ष भी स्पष्ट होता है। निष्कर्षतः कबीर के लिए धार्मिक ऐक्य का अर्थ साझा मानवीय मूल्यों के आधार पर परस्पर सम्मान और न्यायपूर्ण व्यवहार की स्थापना है।

मुख्य शब्दः कबीर, निर्गुण भक्ति, धर्म–समन्वय, हिंदू–मुस्लिम ऐक्य, भूतदया, कर्मकांड, सामाजिक समता

1. परिचय

मध्यकालीन उत्तर भारतीय संत साहित्य में कबीर का विशिष्ट स्थान उनकी वाणी की निर्भीकता और धार्मिक अनुभव की उनकी व्याख्या के कारण है। सामाजिक जीवन में विभिन्न धार्मिक परंपराओं, उपासना–पद्धतियों और आचार–संहिताओं की उपस्थिति ने संवाद की संभावनाएँ खोलीं। इसी परिवेश में जातिगत ऊँच–नीच तथा धार्मिक श्रेष्ठता के दावों ने मनुष्यों के बीच दूरी भी बढ़ाई। कबीर ने इस दूरी को आस्था के नाम पर उचित ठहराने वाली प्रवृत्तियों पर प्रश्न उठाया। उनकी दृष्टि में धर्म की गरिमा इस बात से जुड़ी थी कि मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करता है। किसी को जन्म या संप्रदाय के आधार पर छोटा मानना इसी गरिमा का ह्रास था।

कबीर की वाणी हिंदू और मुस्लिम समाजों के भीतर परिचित प्रतीकों का प्रयोग करती है। वे राम, हरि, रहीम और अल्लाह जैसे नाम लेते हैं तथा मंदिर, मस्जिद, पूजा और नमाज को अपने संवाद का विषय बनाते हैं। इन संदर्भों से यह प्रश्न सामने आता है कि सर्वव्यापी मानी जाने वाली सत्ता पर कोई समुदाय अपना एकाधिकार कैसे स्थापित कर सकता है। प्रतिमा और धार्मिक स्थल से जुड़े आग्रहों पर उनकी आलोचना इसी प्रश्न को अलग–अलग प्रसंगों में उठाती है। उनके लिए अलग नामों और उपासना–स्थलों का अस्तित्व मनुष्यों के बीच वैर का आधार बनने पर नैतिक समस्या उत्पन्न करता है।

कबीर के धार्मिक ऐक्य को समझने के लिए उनकी आध्यात्मिक दृष्टि और सामाजिक आलोचना को साथ पढ़ना आवश्यक है। एक ही परम सत्ता में विश्वास की परीक्षा उस समय होती है जब मनुष्य का सामना अपने से अलग धार्मिक या सामाजिक पहचान वाले व्यक्ति से होता है। यदि वह उस व्यक्ति को अछूत या तिरस्कार के योग्य समझता है, तो उसका व्यवहार उसके अपने विश्वास से मेल नहीं खाता। कबीर के लिए

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

यह विरोधाभास धर्म के सामाजिक रूप की जाँच का आधार है।

1.1 अध्ययन की समस्या

कबीर की वाणी में एक ओर धार्मिक आडंबर और रूढ़ियों पर तीखा व्यंग्य है, दूसरी ओर राम और रहीम की एकता पर बल है। इन दोनों पक्षों को अलग करके पढ़ने से उनकी आलोचना केवल निषेध की भाषा प्रतीत हो सकती है। मुख्य अध्ययन–समस्या यह समझना है कि कबीर की आलोचना किन परिस्थितियों में समन्वय का आधार बनती है और निर्गुण भक्ति, भूतदया तथा सामाजिक समता उस समन्वय से किस प्रकार जुड़ती हैं। इसके लिए पदों में प्रयुक्त प्रतीकों, उनके संबोधन और उनकी नैतिक कसौटी को परस्पर संबद्ध रूप में देखना आवश्यक है।

1.2 अध्ययन के उद्देश्य

1. कबीर की निर्गुण भक्ति और ईश्वर की एकता की अवधारणा का विवेचन करना।
2. चयनित पदों और साखियों के आधार पर उनकी कर्मकांड–विषयक आलोचना का विश्लेषण करना।
3. भूतदया और जातिगत भेदभाव के विरोध का धर्म–समन्वय से संबंध स्पष्ट करना।
4. हिंदू–मुस्लिम ऐक्य के लिए कबीर की वाणी में व्यक्त नैतिक आधारों की पहचान करना।

2. साहित्य समीक्षा

कबीर के संबंध में उपलब्ध साहित्य में उनकी आध्यात्मिक साधना, उनकी काव्यभाषा और सामाजिक रूढ़ियों पर उनके आक्षेपों को अलग–अलग महत्त्व दिया गया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की साहित्येतिहासपरक विवेचना में धार्मिक ऐक्य, जीव–दया और सामाजिक भेदभाव का विरोध एक ही नैतिक चिंता से जुड़े दिखाई देते हैं। प्रतापसिंह चौहान की पुस्तक में कबीर की साधना और साहित्य को साथ पढ़ने से उनके निर्गुण चिंतन, बाह्याचार की आलोचना और लोकभाषा के प्रयोग को समझने की सामग्री मिलती है। सूफी संतों से संबंधित संदर्भग्रंथ में सुरक्षित प्रसंग और काव्य–उद्धरण कबीर की लोकस्मृति तथा हिंदू–मुस्लिम समुदायों में उनके ग्रहण पर विचार करने में सहायक हैं।

इन ग्रंथों के अध्ययन में काव्य–पंक्ति, बाद की आलोचनात्मक व्याख्या और संत की जीवनी से संबंधित जनश्रुति के बीच भेद आवश्यक है। किसी पद में मूर्ति या मस्जिद की आलोचना काव्यगत साक्ष्य है। उससे किसी पूरे समुदाय के ऐतिहासिक व्यवहार के बारे में निष्कर्ष निकालने की सीमा है। इसी प्रकार कबीर के अंतिम संस्कार से जुड़ी लोककथा उनकी साझा स्मृति के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण है। वह अपने आप में घटना का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं बनती। प्रस्तुत विश्लेषण मुख्यतः उस प्रश्न पर केंद्रित है कि कबीर की वाणी में समता और करुणा धार्मिक ऐक्य की व्यावहारिक कसौटियाँ कैसे बनती हैं।

3. अध्ययन पद्धति

यह गुणात्मक, वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक अध्ययन है। विश्लेषण की इकाइयाँ कबीर की चयनित साखियाँ, पद और उनसे जुड़े व्याख्यात्मक प्रसंग हैं। पाठों का चयन अध्ययन के उद्धेश्यों के अनुसार किया गया है। इसमें ईश्वर की एकता, उपासना के बाह्य रूप, पशुबलि, जातिगत श्रेष्ठता, सच्ची भक्ति तथा हिंदू–मुस्लिम ऐक्य से संबंधित अंश सम्मिलित हैं। प्रत्येक अंश में पहले उसके संबोधन, शब्दावली और बिंबों पर विचार किया गया है। उसके बाद कथन की नैतिक कसौटी को उसी विषय से जुड़े अन्य अंशों के साथ पढ़ा गया है।

उदाहरण के लिए, पशुबलि पर व्यंग्य को दो धार्मिक पद्धतियों की तुलना के रूप में पढ़ते हुए यह देखा गया है कि कबीर दोनों पर करुणा की समान कसौटी लागू करते हैं। ईश्वर के विविध नामों का विवेचन करते हुए ध्यान नामों के सामुदायिक प्रयोग और उनके माध्यम से व्यक्त आध्यात्मिक अर्थ पर है। अध्ययन की सीमा चयनित पाठों और संदर्भित ग्रंथों तक है। कबीर–वाणी की विभिन्न पाठ–परंपराओं का आलोचनात्मक

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

संपादन और जीवनी के विवादित प्रसंगों का ऐतिहासिक सत्यापन इसके दायरे से बाहर है।

4. भूतदया और धार्मिक आचरण

4.1 जीवों के प्रति करुणा

कबीर के यहाँ भूतदया का आशय जीवमात्र के प्रति करुणा से है। उनकी वाणी में यह करुणा जीवन की रक्षा और पीड़ा के प्रति संवेदनशीलता के रूप में सामने आती है। जब धार्मिक विधि के नाम पर पशुबलि दी जाती है, तब वे विधि की मान्यता के साथ–साथ उसके परिणाम को भी देखते हैं। पशु की पीड़ा को विचार से बाहर रखकर किसी कर्म को पवित्र घोषित करना उनकी नैतिक दृष्टि में असंगत है। मिट्टी से बनी प्रतिमा के सामने जीव की बलि पर प्रश्न करने वाली पंक्तियाँ इसी असंगति को उजागर करती हैं।

माटी के करि देवी–देवा, काटि–काटि जिव देइया।
जो तुहरा है साँचा देवा, खेत चरने क्यों न लेइया।।[1]

यहाँ खेत में चरने का प्रश्न व्यंग्य की शक्ति को सामने लाता है। यदि उपासक अपने देवता को जीवित सत्ता मानता है, तो वह उस सत्ता के नाम पर जीवित प्राणी के प्रति हिंसा को कैसे उचित ठहराता है। व्यंग्य उपासना और उसके व्यावहारिक परिणाम के बीच संबंध स्थापित करता है। यह संबंध उस समय और स्पष्ट हो जाता है जब कबीर अलग–अलग धार्मिक पद्धतियों में हिंसा के लिए प्रयुक्त अलग नामों को साथ रखते हैं।

4.2 हलाल और झटके पर व्यंग्य

कबीर की आलोचना की समन्वयकारी प्रकृति उनके उस कथन में स्पष्ट होती है जिसमें हलाल और झटके की पद्धतियों को एक ही प्रसंग में लिया गया है। दोनों समुदायों की शब्दावली और धार्मिक औचित्य भिन्न हैं, किंतु जीव की हत्या उनका साझा परिणाम है। दया और मेहर का साथ–साथ प्रयोग दोनों परंपराओं के सामने उन्हीं की नैतिक भाषा में प्रश्न रखता है।

हिंदू की दया, मेहर तुरकन की दूनों घटसों के त्यागी।
वै हलाल वे झटके मारै आग दोनों घर लागी।।[2]

इन पंक्तियों में तीखा संबोधन दोनों पक्षों के लिए है। इस समान आलोचनात्मक व्यवहार का अर्थ यह है कि करुणा की अपेक्षा किसी एक समुदाय पर सीमित नहीं है। यदि जीव–दया की कसौटी स्वीकार की जाती है, तो धार्मिक पहचान के आधार पर उससे छूट का दावा भी प्रश्न के घेरे में आता है। बौद्ध करुणा के प्रसंग से इस दृष्टि की तुलना की जा सकती है, क्योंकि दोनों में हिंसा के नैतिक औचित्य पर प्रश्न उठता है। यह समानता प्रत्यक्ष ऐतिहासिक प्रभाव का प्रमाण देने के बजाय करुणा की साझा नैतिक चिंता को दिखाती है।

5. निर्गुण भक्ति और ईश्वर की एकता

5.1 राम और रहीम का आध्यात्मिक संबंध

कबीर के लिए धर्म–समन्वय का आध्यात्मिक आधार निर्गुण ब्रह्म है। निर्गुण सत्ता किसी एक रूप, नाम अथवा उपासना–विधि में सीमित नहीं होती। इस आधार पर राम और रहीम को ऐसी संबोधन–परंपराओं के रूप में पढ़ा जा सकता है जिनकी भाषिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अलग है, पर जिनके माध्यम से उपासक उसी परम सत्ता की ओर उन्मुख हो सकता है। कबीर इस साझे आध्यात्मिक दावे को आपसी व्यवहार पर लागू

[1] कबीर, कबीर वचनावली, संपा– अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ– 239।

[2] बीजक कबीर साहब, कबीर, टीकाकार विश्वनाथ सिंह जूदेव, 1904, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, पृ. 215, शब्द 10, छंद 4।

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

करते हैं। यदि परम सत्ता सबकी है, तो उसके नाम पर किसी दूसरे मनुष्य को हीन मानने का तर्क कमजोर पड़ जाता है।

कबीर की वाणी में गुरु, साधु और हरिजन के संदर्भों में व्यक्त संबंध भी जाति की जगह साधना और सत्यनिष्ठा को महत्त्व देते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में आध्यात्मिक निकटता को संबंधों की ऐसी भाषा में व्यक्त किया गया है जिसमें स्वीकृति का आधार साधना है।

सतगुरू सम को है सगा, साधू सम को दात।
हरि समान को है हितू, हरिजन सम को जात।।[3]

नाम–स्मरण कबीर के लिए साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है। नाम का उच्चारण आत्मपरीक्षण और आचरण से जुड़कर ही अर्थ ग्रहण करता है। यदि कोई व्यक्ति अपने चुने हुए ईश्वर–नाम का उच्चारण करते हुए दूसरे के नाम या श्रद्धा का तिरस्कार करता है, तो उसकी साधना में वही विभाजन प्रवेश करता है जिसे ईश्वर की एकता का विश्वास दूर करने का आग्रह करता है। इसलिए राम और रहीम की एकता का कथन धार्मिक भाषा के साथ सामाजिक व्यवहार की भी व्याख्या करता है।

5.2 अवतार और त्रिगुण की सीमा

अवतार और त्रिगुण से जुड़े प्रसंगों में कबीर उस परम सत्ता की ओर संकेत करते हैं जिसे किसी एक प्रकट रूप या गुण से पूरी तरह परिभाषित नहीं किया जा सकता। दस अवतारों की चर्चा में उत्पत्ति और नाश का प्रश्न उठाकर वे अविनाशी सत्ता और उसके प्रकट रूपों के बीच अंतर करते हैं।

दस अवतार ईश्वरी माया कर्त्ता कै जिन पूजा।
कहै कबीर सुनो हो संतो उपजै खपै सो दूजा ॥[4]

ब्रह्मा, शंकर और हरि के नामों को त्रिगुण की चर्चा में रखकर वे परिचित धार्मिक बिंबों के माध्यम से निर्गुण साधना की व्याख्या करते हैं। पद के अंतिम चरण में हिंदू और तुरुक की पहचानें उसी आध्यात्मिक प्रश्न के भीतर आ जाती हैं।

रजगुन ब्रह्मा तमगुन संकर सन्तागुना हरि सोई।
कहैं कबीर राम रमि रहिये हिंदू तुरूक न कोई।।[5]

इस पद में गुणों और रूपों से संबद्ध देवताओं की चर्चा के बाद राम में रमने की बात कही गई है। संदर्भ में राम का नाम निर्गुण साधना की ओर संकेत करता है। अंतिम चरण सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। वह पूछता है कि जब आध्यात्मिक उपलब्धि मनुष्य की साधना पर निर्भर मानी जाती है, तब संप्रदायगत पहचान को उसका निर्णायक प्रमाण कैसे बनाया जा सकता है। इस प्रश्न से निर्गुण चिंतन का संबंध सामाजिक समता से जुड़ता है।

6. कर्मकांड की आलोचना और सच्ची भक्ति

6.1 शास्त्र–पाठ और अनुभव

कबीर की वाणी में शास्त्रों और उनके पाठकों पर किए गए व्यंग्य को कर्मकांड तथा धार्मिक अधिकार के

---

[3] कबीर वचनावली, कबीर, संपा. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 119, साखी संख्या 299।

[4] कबीर वचनावली, कबीर, संपा. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 164।

[5] बीजक कबीर साहब, कबीर, टीकाकार विश्वनाथ सिंह जूदेव, 1904, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, पृ. 354, शब्द 75, छंद 4

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

संदर्भ में पढ़ना चाहिए। उनकी आपत्ति उस स्थिति पर है जिसमें पाठ, अनुभव और विवेक की जगह ले लेता है। यदि शास्त्र का पाठ करने वाला व्यक्ति उसके नाम पर हिंसा या भेदभाव को उचित ठहराता है, तो ज्ञान का दावा उसके आचरण से टकराता है।

वेद पढ़ने के बाद भी उसका भेद न जानने पर कही गई पंक्तियाँ इसी दूरी पर ध्यान खींचती हैं।

नष्ट गए जिन वेद बखाना।
वेद पढा पै भेद न जाना।।[6]

कबीर की रूढ़ि–विरोधी भाषा को लेकर संत साहित्य में अलग दृष्टियाँ भी मिलती हैं। तुलसीदास के कथन में साखी, सबदी और दोहरे के माध्यम से वेद–पुराण की निंदा किए जाने की आपत्ति सामने आती है।

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान।
भगत निरूपहिं भगति कलिं निंदहिं बेद पुरान।।[7]

कबीर जिस कथन से शास्त्र और व्यवहार की दूरी उजागर करते हैं, उसी को दूसरा पाठक शास्त्र की प्रतिष्ठा पर आघात के रूप में ग्रहण कर सकता है। बुद्ध के संबंध में तुलसीदास की टिप्पणी में भी वेद–निंदा का प्रश्न आता है।

अतुलित महिमा बेद की तुलसी किएँ बिचार।
जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार॥[8]

इन उद्धरणों में तुलसीदास का सरोकार वेद की प्रतिष्ठा से है। कबीर के उद्धृत पद का सरोकार पाठ और आचरण के संबंध से है। इस वैचारिक अंतर के कारण कर्मकांड की आलोचना का अर्थ उस आलोचना के श्रोताओं और व्याख्याकारों के लिए बदल जाता है।

6.2 लोकभाषा और धार्मिक ज्ञान की पहुँच

कबीर की साखी, सबद और दोहे संवाद को उन श्रोताओं तक पहुँचाते हैं जिनके लिए औपचारिक शास्त्रीय विमर्श सहज उपलब्ध नहीं था। खेत, चाकी, पत्थर, देहरा और मस्जिद जैसे बिंब किसी अमूर्त विचार को परिचित अनुभव में बदल देते हैं। इस काव्यभाषा के माध्यम से श्रोता धर्म से जुड़े दावों को अपने जीवन की घटनाओं से जोड़कर देख सकता है। गीत, स्मरण और मौखिक संप्रेषण के अनुकूल संक्षिप्त कथन वाणी को अलग–अलग सामाजिक समूहों में पहुँचने में भी सहायता देते हैं।

व्यंग्य की प्रश्नात्मक शैली इस प्रक्रिया में विशेष भूमिका निभाती है। कबीर प्रतिमा, पूजा या शास्त्र का परिचित उदाहरण उठाकर श्रोता से उसके प्रयोजन पर विचार कराते हैं। जब वे पत्थर और चाकी को साथ रखते हैं, तब अनुष्ठानिक उपयोग और लोक–उपयोग के बीच विचार का अवसर बनता है। इसी प्रकार मस्जिद और पुकार का प्रसंग यह प्रश्न सामने लाता है कि सर्वव्यापी सत्ता तक पहुँचने के लिए स्थान और ध्वनि को कितना निर्णायक माना जाए। उदाहरणों की परिचितता वाणी के आलोचनात्मक आशय को समझने की सुविधा देती है।

7. सामाजिक समता और कथनी–करनी

7.1 जातिगत अहंकार पर प्रश्न

कबीर की सामाजिक आलोचना में जाति पर आधारित श्रेष्ठता का विरोध केंद्रीय स्थान रखता है। धर्म का

---

[6] बीजक कबीर साहब, कबीर, टीकाकार विश्वनाथ सिंह जूदेव, 1904, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, पृ. 150, रमैनी 63, चौपाई 3।

[7] दोहावली, गोस्वामी तुलसीदास, 24वाँ संस्करण (वि. सं. 2039), गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 186, दोहा संख्या 554।

[8] दोहावली, गोस्वामी तुलसीदास, 24वाँ संस्करण (वि. सं. 2039), गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 155, दोहा संख्या 464।

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

उपदेश देने वाला व्यक्ति यदि दूसरे के स्पर्श से स्वयं को अपवित्र मानकर स्नान करता है, तो उसकी कथनी और करनी की दूरी स्पष्ट हो जाती है। कबीर के प्रश्न की धार इस बात में है कि वह उपदेशक को उसी के घोषित आध्यात्मिक सिद्धांत की कसौटी पर परखता है। यदि समस्त प्राणियों में एक ही तत्त्व की मान्यता है, तो सामाजिक दूरी को पवित्रता के नाम पर बनाए रखना कठिन हो जाता है। इस प्रकार जातिगत अहंकार की उनकी आलोचना धार्मिक ज्ञान की प्रामाणिकता से जुड़ती है।

यह प्रश्न हिंदू–मुस्लिम ऐक्य के विश्लेषण में भी प्रासंगिक है। समुदायों के बीच सम्मान की अपेक्षा उस स्थिति में अधूरी रहती है जब समुदाय अपने भीतर जन्म और सामाजिक स्थिति के आधार पर अपमान को स्वीकार करता हो। कबीर की दृष्टि में समन्वय की सामाजिक कसौटी उन व्यवहारों में दिखाई देती है जो भेद की स्थिति में भी मनुष्य की गरिमा स्वीकार करते हैं। इसलिए धार्मिक ऐक्य और जातिगत समता उनकी वाणी में परस्पर संबद्ध हैं।

7.2 आंतरिक साधना और व्यवहार

कबीर सच्ची भक्ति को अहंकार के क्षय, नाम–स्मरण और ईमानदार व्यवहार से जोड़ते हैं। उनके लिए साधना की प्रामाणिकता उस समय सामने आती है जब मनुष्य अपने व्यवहार में विनम्रता और करुणा दिखाता है। बाह्याचार की आलोचना इसी दृष्टि का विस्तार है। प्रतिमा, उपासना–स्थल या धार्मिक चिह्न को अंतिम साध्य मान लेने पर आत्मपरीक्षण पीछे छूट सकता है। इसी कारण कबीर ईश्वर की खोज को भीतर की सजगता और सत्य की अनुभूति से जोड़ते हैं।

जीवित पिता की सेवा और मृत्यु के बाद किए जाने वाले श्राद्ध के बीच उठाया गया प्रश्न इस नैतिकता का एक परिचित उदाहरण है। किसी उत्तरदायित्व को अगले अनुष्ठान तक टाल देना जीवित व्यक्ति की तत्काल आवश्यकता को अनदेखा कर देता है। कबीर की दृष्टि में नैतिक आचरण की जाँच उस समय होती है जब सहायता की आवश्यकता सामने हो। धार्मिक विधि का मूल्य भी उसी व्यवहार के प्रकाश में परखा जाता है।

8. हिंदू–मुस्लिम ऐक्य और साझा स्मृति

8.1 मंदिर और मस्जिद पर समान प्रश्न

कबीर जिन परंपराओं को संबोधित करते हैं, उनके प्रतीकों का चुनाव प्रसंग के अनुसार बदलता है। प्रतिमा–पूजा पर प्रश्न करते समय पत्थर और चाकी का उदाहरण आता है। मस्जिद से पुकारने वाले मुल्ला के प्रसंग में दूरी और सर्वव्यापकता का प्रश्न उठता है। दोनों उदाहरणों को साथ पढ़ने से पता चलता है कि ईश्वर के बारे में स्वीकृत विश्वास को उपासक के व्यवहार के सामने रखकर कबीर उसका परीक्षण करते हैं।

पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजू पहार।
ताते यह चाकी भली पीस खाय संसार।।[9]

यहाँ चाकी का बिंब ऐसे कार्य की ओर ध्यान ले जाता है जिसका लाभ समाज को सीधे मिलता है। पत्थर के दो उपयोगों को आमने–सामने रखकर कबीर लोकहित की कसौटी प्रस्तुत करते हैं। मुल्ला को संबोधित पंक्तियों में ईश्वर को दूर मानकर पुकारने की धारणा पर प्रश्न है। यहाँ राम और रहीम का साथ आना उसी सर्वव्यापी सत्ता के लिए प्रचलित दो संबोधनों को एक पद में स्थान देता है।

[9] कबीर वचनावली, कबीर, संपा. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 78।

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

मुलां कहाँ पुकारै दूरि, रांम रहीम रह्या भरपूरि॥ टेक॥

यहु तौ अलह गूंगा नांहीं, देखै खलक दुनी दिल माहीं॥[10]

इन प्रसंगों का महत्त्व उपासना के बाह्य रूपों के परीक्षण में है। यदि प्रतिमा के सामने खड़ा उपासक अपने जीवन में दया का व्यवहार करता है या मस्जिद में जाने वाला व्यक्ति अपने पड़ोसी के प्रति न्यायपूर्ण रहता है, तो उनकी आस्था का सामाजिक अर्थ उनके आचरण में दिखाई देता है। कबीर की आपत्ति उस स्थिति से है जिसमें धार्मिक प्रदर्शन बढ़ता है और उसके साथ उत्तरदायित्व का बोध कम होता है। एक ही कसौटी का दोनों पर प्रयोग उनकी समन्वयकारी दृष्टि को स्पष्ट करता है।

8.2 कबीर की लोकस्मृति

कबीर के अंतिम संस्कार से जुड़ी लोकपरंपरा में हिंदू और मुस्लिम अनुयायियों के बीच संस्कार की विधि पर मतभेद का वर्णन मिलता है। कथा के अनुसार पार्थिव शरीर के स्थान पर फूल मिले, जिन्हें दोनों पक्षों ने अपनी–अपनी रीति के अनुसार ग्रहण किया। इस आख्यान का सांस्कृतिक महत्त्व इस बात में है कि अलग धार्मिक विधियों के साथ एक ही संत की स्मृति भी बनी रहती है। इसे लोकस्मृति के रूप में पढ़ने से कबीर की वाणी के विभिन्न समुदायों में ग्रहण को समझने का एक आधार मिलता है।

कथा में उपस्थित मतभेद उस चुनौती को भी सामने लाता है जिसे कबीर की वाणी बार–बार उठाती है। किसी संत को अपना मानना एक सांस्कृतिक संबंध व्यक्त कर सकता है। जब उस संबंध से दूसरे समुदाय का अधिकार या आदर समाप्त होने लगे, तब वह ऐक्य के विरुद्ध काम करने लगता है। साझा स्मृति का मूल्य इसी बात में है कि वह भिन्न रीति वाले लोगों को उसी विरासत के साथ संबंध रखने का अवसर देती है।

9. निष्कर्ष

चयनित पाठों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कबीर की निर्गुण भक्ति और उनकी सामाजिक आलोचना एक–दूसरे से जुड़ी हैं। ईश्वर की एकता विभिन्न धार्मिक नामों को साझा आध्यात्मिक अर्थ देती है। भूतदया उस एकता को जीवों के प्रति व्यवहार की कसौटी बनाती है। जातिगत भेदभाव और छुआछूत की आलोचना इस कसौटी को उन संबंधों पर लागू करती है जिनमें जन्म से सामाजिक प्रतिष्ठा तय होती है।

कबीर मंदिर, मस्जिद, शास्त्र–पाठ और अनुष्ठान की चर्चा उनके नैतिक परिणामों के संदर्भ में करते हैं। हलाल और झटके पर व्यंग्य, राम और रहीम की एकता तथा कथनी और करनी की दूरी पर प्रश्न इसी पद्धति के विविध रूप हैं। लोकभाषा की संक्षिप्त अभिव्यक्ति इन प्रश्नों को पंडित या मुल्ला तक सीमित रखने के बजाय सामान्य श्रोता के अनुभव तक ले जाती है।

कबीर की दृष्टि में हिंदू–मुस्लिम ऐक्य की स्थापना परस्पर सम्मान, दया और न्यायपूर्ण व्यवहार पर निर्भर है। उपासना की विविधता के बीच ये मानक ऐसे सामाजिक संबंधों की संभावना बनाते हैं जिनमें किसी समुदाय की पहचान दूसरे की गरिमा कम करने का आधार न बने। यही संबंध कबीर के धर्म–समन्वयकारी रूप को उनकी आध्यात्मिक साधना और सामाजिक चिंतन दोनों से जोड़ता है।

[10] कबीर–ग्रंथावली, कबीर, संपा. श्यामसुंदर दास, 1928, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 107, पद संख्या 60।

INTERNATIONAL JOURNAL OF EXPLORING EMERGING TRENDS IN ENGINEERING
Peer-Reviewed, Refereed, Indexed and International Journal, https://ijoeete.com/
(Peer Review Journal as per UGC 2025 Standard Guidelines)
|ISSN No. 2394-0573 |Volume: 12, Issue: 4 | October – December 2025

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर, कबीर वचनावली, संपा– अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध", 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ– 239।
2. बीजक कबीर साहब, कबीर, टीकाकार विश्वनाथ सिंह जूदेव, 1904, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, पृ. 215, शब्द 10, छंद 4।
3. कबीर वचनावली, कबीर, संपा. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 119, साखी संख्या 299।
4. कबीर वचनावली, कबीर, संपा. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 164।
5. बीजक कबीर साहब, कबीर, टीकाकार विश्वनाथ सिंह जूदेव, 1904, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, पृ. 354, शब्द 75, छंद 4
6. बीजक कबीर साहब, कबीर, टीकाकार विश्वनाथ सिंह जूदेव, 1904, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई, पृ. 150, रमैनी 63, चौपाई 3।
7. दोहावली, गोस्वामी तुलसीदास, 24वाँ संस्करण (वि. सं. 2039), गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 186, दोहा संख्या 554।
8. दोहावली, गोस्वामी तुलसीदास, 24वाँ संस्करण (वि. सं. 2039), गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 155, दोहा संख्या 464।
9. कबीर वचनावली, कबीर, संपा. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 1916, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 78।
10. कबीर–ग्रंथावली, कबीर, संपा. श्यामसुंदर दास, 1928, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 107, पद संख्या 60।